शब्द–ब्रह्म
E - ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जून 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भारतेन्दु के साहित्य में ग्रामीण परिवेश

डॉ. पूर्णिमा जोशी
तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय
इन्दौर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

भारतेन्दु अपने युग की बेमिसाल अभिव्यक्ति थे। शायद ही हिन्दी का कोई ऐसा रचनाकार हो जिसने अपने युग की चेतना को इतनी सशक्त वाणी दी हो। "भारतेन्दु का व्यक्तित्व लगभग उस सूरज जैसा है जो शीत से ठिठुरने कुहरे भरे भोर में तह पर तह ढके बादलों को चीरता हुआ निकलता है , जिससे धरती अपना अंधेरा भी पांछती है और अपना बदन भी सेंकती है। जिससे हजारों धरती पुत्र उस जानलेवा शीत से जूझने और अंधेरे से लड़ने के लिए कमर कसने में समर्थ होते है।" 1 भारतेन्दु के आविभार्व के समय देश का राजनीतिक क्षितिज कुछ ऐसा ही था। आर्थिक धुंधलापन और सामाजिक संदिग्धता विशेष तौर पर ग्रामीण परिवेश में छटपटाहट का परिणाम था। भारतेन्दु और उनका प्रभा मंडलीय लेखन, जिसने न केवल ग्रामीण अंचल को वाणी दी वरन् तत्कालीन राजनीतिक समझ और राजनीतिक चेतना को भी स्वर दिया था। भारतेन्दु ने शहरी भारतीयों के अलावा ग्रामीण भारतीयों को उनके मन मे घर कर गये पराधीनता बोध को भी झकझोरा था। लेखक का कार्य केवल व्यक्तियों की समस्याओं को उद्घाटित करना ही नहीं वरन् उन्हें उनके समाधान तक भी पहुँचाना होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतेंदु युगीन साहित्य में ग्रामीण परिवेश की चर्चा की गयी है।

भूमिका

भारतेन्दु के समय साहित्य में दे श प्रेम झलकता है। देश की स्थिति पर उनकी वेदना भी स्पष्ट है। कहीं व्यंग्य का भी पु ट है तो कहीं समाधान भी है। भारतेन्दु जी ने केवल ग्रामीण परिवेश को ही अपने लेखन का विषय नहीं बनाया है वे तो समग्र भारत को अपने लेखन में समेटना चाहते थे। भारतेन्दु ने अपनी 6 वर्षों की मासूम आँखों से भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम देखा था और अपनी उन्हीं आँखों से उसका दमन भी देखा। कम्पनी बहादुर के जालिम राज्य की समाप्ति और महारानी विक्टोरिया के मधुर आश्वासनों तथा सुहावने सपने के घोषणा पत्र को भी सुना था। कम्पनी सरकार के जुल्म को जान ब्राइट को भी इस काल को 'ए हंड्रेड मार्टय आफ क्राइम' कहना पड़ा। इसी अनाचार युग के संबंध में सर जार्ज कार्नवल लीविस ने हाउस आफ कामन्स में 12 फरवरी 1858 को कहा था , "मैं पूरे विश्वास के साथ कहता हूँ कि धरती पर आज तक कोई भी सभ्य सरकार इतनी भ्रष्ट , इतनी विश्वासघाती और इतनी लुटेरी नहीं पायी गई।"2

भारतेन्दु ने प्रारम्भ से यातायात में रेलों की शुरूआत पर लिखा "धन्य सहबा जौन चलाइस रेल। मानो जादू किहिस दिखाइस खेल। " किन्तु बाद में यह सुख स्वप्न टूट गया। महारानी के आश्वासन कोरे वादे निकले। लोगों ने देखा कि रेलें गाँव-गाँव अकाल पीड़ितों को अन्न पहुँचाने

के लिये नहीं वरन् बन्दरगाहों तक कच्चा माल ढोने के लिए है। दुर्भिक्ष, अकाल और दे श के उद्योग और शिल्प को नष्ट करने के षड़यंत्र हो रहे थे। भारत को मध्य कृषि पर निर्भर रहने की विवशता के हाथों सौंप दिया गया था। टैक्स लगा दिए गए थे। अकाल के बावजूद लगान में बढ़ोतरी हुई। दूसरी ओर सामाजिक स्थिति इस से भी विषम थी। धार्मिक असहिष्णुता और भी कठोर हो गई थी। विदे श यात्रा करने पर धर्म , समुद्री पानी में नमक की पुतली की तरह गलने लगा। विधवा विवाह का वर्णन और बाल विवाह तथा बेमेल विवाह पारिवारिक संतुलन के लिए अभिशाप हो गए थे। धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक मत-मतान्तरों का प्रचार और उनका खण्डन-मण्डन ही प्रधान हो गया गया था और यह सब परिस्थितियाँ गाँवों में बुरी तरह से अपना प्रभाव दिखला रही थीं।

भारतेंदु के साहित्य में ग्रामीण जीवन

भारतेन्दु जी अंग्रेजों के कृपापात्र और विश्वासपात्र सेठ अमीरचंद की पाँचवीं पीढ़ी में पैदा हुए थे। भारतेन्दु की विषम स्थिति थी। पारिवारिक स्तर पर वे 'क्राऊन' के विश्वासपात्र थे, पर वे देख रहे थे कि अंग्रेज दे श के साथ वि श्वासघात कर रहे थे। यह स्थिति भी उनके लिये पीड़ादायक थी। वे दोनों विपरीत परिस्थितियों से जूझ रहे थे। उनके छंदों में राजभक्ति और देशभक्ति दोनों दिखलाई देती हैं।

अंग्रेजराज समुख साज, सबै विधि भारी,
पै धन विदेश चलि जात, यह है ख्वारी।

भारतेन्दु की हिन्दी भाषा ग्रामीण परिजनों के समझ में आने जैसी थी। वे शब्दों के जादूगर थे, पर उनका रस उनकी अभिव्यक्ति ग्रामीण जन हेतु उपयुक्त थी। उन्होंने पांडित्य प्रदर्शन नहीं किया। उस समय शहर कम थे। भारत की 85 प्रतिशत जनता गाँवों में ही निवास करती थी। उनका लेखन पूरे भारत के लिये था अर्थात् गाँवों के लिये था। कृषकों के लिये था। उदाहरण प्रस्तुत है -

"भीतर-भीतर सब रस चूसें, बाहर से तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अतितेज, क्यों सखि साजन, नहीं अंग्रेज।"
सब गुरूजन को बुरो बतावै, खिचड़ी अलग पकावै।
भीतर तत्व न, झूठी तेजी, क्यों सखि साजन, नहीं अंग्रेज।

अपने देश के अतीत पर उन्हें गर्व था , वे बड़े गौरव के साथ कहते हैं:-

"सबसे पहले जेहि ईश्वर विधाता कीतो।
सबसे पहले जो रूप रंग रस भीतों
सबसे पहले विद्य फल जिन गहिलीतो।

इन स्वर्णिम अतीत के बाद जब उनकी देशभक्ति वर्तमान को देखती है तो वह तिलमिला उठती है -

"जो भारत जग में रहमो सबसे देश।
नाही भारत में रहमो अब नहि सुख को लेस।

चाँदी के पाल ने में झूलने वाले भारतेन्दु का बचपन सामन्ती वातावरण में ही फला -फूला था। कहते हैं कि उनके विवाह में कुहाँ में चीनी धोलकर बारान का स्वागत किया गया था। बारात तीन मील लम्बी थी। ऐसी सम्पन्नता और सामन्ती वृत्ति राष्ट्रीय चेतना को समझन में भारतेन्दु के आड़े नहीं आयी। वैभव की दीवारें उनकी समझ को नहीं घेर पायी। आम आदमी अर्थात् ग्रामीण से परिचित होने और दे श दर्शन की लालसा उनकी बचपन से बनी रही। ग्यारह वर्ष की अवस्था से उन्होंने देशाटन आरम्भ कर दिया था। नगरों की यात्रा के अलावा वे गाँव-गाँव घूमे। जन-जीवन को उन्होंने करीब से देखा था।

उनके यात्रा वर्णनों में ऐसा हंसमुख और प्रसन्न गद्य दिखता है , जो उनके मस्त और जागरूक व्यक्तित्व का परिचायक है। काशी नरेश के साथ वैद्यनाथ धाम की यात्रा की एक छवि इसका उदाहरण है :

“श्री काशी नरेश के साथ वैद्यनाथ को चले। चारों ओर हरि धाम का उनपर रंग-रंग का बादल , बगसर के आगे बड़ा भारी मैदान पर सब्ज काशी मरवयत से चढ़ा हुआ। सांझ होने से बादल के छोटे-छोटे टुकड़े लाल पीले नीले बनारस कालेज की रंगीन शीशे की खिड़कियों के समान था।”

भारतेन्दु की जिन्दादिली और दिलफेंक मिजाज जैसा गद्य में उभरा है , वैसा पद्य में नहीं। सरयूपार की यात्रा का एक दिलचस्प वर्णन इस प्रकार है -

“बाहेर बस्ती। अगर यही बस्ती है तो उजाड़ किसे कहेंगे। बैसवाह के पुरूष सब पुरूष, सब भीम, सब अर्जुन, सब सूत पौराणिक, सब वाजिद अली शाह, नई सभ्यता अयी उधा नहीं पाई है। यहाँ के पुरूषों की रसिकता , मोटीचाल, सूरती और खड़ी मोष्ठ में छिपी है और स्त्रियों की रसि कता मैले वस्त्र, और सूत ऐसे नये में। मुझे उनके जब गीतों में बोली प्यारी सखियां सीताराम राम राम यही अच्छा महसूस हुआ। बैलगाड़ी की डाल में बैठे-बैठे सोचते थे कि काशी में रहते तो बहुत दिन हुए पर शिवमय ही हुए।

उनका अध्ययन केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित नहीं था। समाज को बहुत दूर तक देखने की उनमें ललक थी। बैलगाड़ी की यात्रा में खाए हिचकोरे ग्रामीण परिवे श की यात्रा का सजीव वर्णन उनकी इन पंक्तियों में मिलता है -

हिलत डुलत चलत गाड़ी आवै,
झूलत सिर, टूटन रीढ़, कमर झौका खावै।

रीतिबद्ध काव्य रचना को छोड़कर मध्ययुगीन सभी काव्य प्रवृत्तियों को अपनी रचना प्रक्रिया में समेटते हुए भारतेन्दु की उन्मुख प्रकृति उस कविता संसार से भाग निकल ना चाहती थी , क्योंकि ऐसी काव्य परम्परा की पापड़ छोड़ती दीवारें, उनकी काव्य प्रतिभा को लोक साहित्य और लोक गीत के खुले वातावरण में जाने से रोकने में सर्वथा असमर्थ थी। इसकी ओर उनकी मानसिकता जन-जीवन से अलग-थलग पड़े साहित्य को जनता से जोड़ना चाहती थी। वे जंगल में उगे कैक्टस को लाकर साहित्य के ड्राइंग रूम को विलास भवन से निकाल कर गाँवों की नपती खुरदुरी छाती पर लाना चाहते थे , जहाँ लोक इस की मस्त रजधारा स्वतः ही प्रवाहित होती रहती है। इसके लिए उन्होंने मई 1879 ई. की कवि वचन सुधा में एक लम्बी विज्ञप्ति प्रकाशित करवायी थी। शिवनन्दन सहाय कृत भारतेन्दु के जीवन चरित से उनका कुछ अं श प्रस्तुत है :

“भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महत्वपूर्ण आजकल सोच रहे हैं , उनमें एक और उपाय होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े-बड़े लेख और काव्य प्रका श होते हैं किन्तु वे जन साधारण को दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। इसके हेतु मैंने यह सोचा है कि जातीय संगीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश गाँव-गाँव में साधारण लोगों में फैलेगी , उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना शीघ्र ग्राम गीत फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है, उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता है।”

इस विज्ञप्ति से साफ जाहिर है कि अच्छे से अच्छा साहित्य जो जन साधारण सभा में दृष्टिगोचर नहीं होता, देश के लिये सम्प्रति बेकार

होता है। आम आदमी जो कि ग्रामीण परिवे श से होता है उनको धुन वाला साहित्य लिखा जाना चाहिए। लिखना ही पर्याप्त नहीं है , उसका प्रचार भी होना चाहिए।

भारतेन्दु सुदृढ़ और प्रौढ़ साहित्यिक परम्परा से जुड़े व्यक्ति थे। संगीत का अभिप्राय शास्त्रीय स्तर उनकी रूचि में रचा बसा था , फिर भी उन्होंने लोक साहित्य की शक्ति और उसकी अनिवार्यता को पहचाना।

उन्होंने 'पक्के गाने' सुनने वालों को सलाह दी कि वे लोक धुनों में भी रस लें। उनमें लोक साहित्य का जन जागरण का माध्यम बनाने की व्यग्रता दिखायी देती थी। उन्होंने इस साहित्य के प्रचार-प्रसार के सम्बन्ध में लिखा है-

"जिन लोगों का ग्रामीणों से सम्बन्ध है , वे गाँव में ऐसी पुस्तक भेज दें। जहाँ कहीं ऐसे गीत सुनें उनका अभिनन्दन करें। इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे-छोटे छन्दों में और साधारण भाषा में बने , वरन गंवारी भाषा में हों और स्त्रियों की भाषा में विशेष हो। कजली, ठुमरी, खेमका, कहावा, अद्धा, चैती, होली, सांझी, लम्बे लखनी, जाने के गीत , बिरहा, चनैती, गजल इत्यादि ग्राम गीतों में इनका प्रचार हो और जब दे श की भाषाओं में इसी अनुसार हो अर्थात् पंजाब में पंजाबी, बुन्देलखड में बुंदेलखण्डी, बिहार में बिहारी ऐसे देशों में जिस भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बने।" भारतेन्दु ने न केवल लोकगीतों की रचना की वरन् लावानी बाजों के बीच बैठकर वे गाते भी थे। इससे लोगों का लोक गीतों में, ग्राम्य गीतों में आकर्षण बढ़ा और ग्रामीण परिवे श के लोक साहित्य को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

भारतेन्दु ने भारत के उत्थान के लिये ग्रामीण परिवेश को अपने लेखन में प्रस्तुत कर लोक जीवन को नये आयाम दिये। उन्होंने अपने लेखन के द्वारा ग्रामीण परिवेश की भाषा को अपनाया। भारतेन्दु ही पहले पत्रकार थे जिन्होंने बुक रिव्यू की परम्परा हिन्दी में चलायी। उनकी पत्रकारिता हिन्दी शब्द भंडार का विस्तार तथा हिन्दी वांड्.मय की वृद्धि के लिये सदा प्रत्यन शील रही। उनकी पत्रकारिता कई मोर्चे पर एक साथ लड़ रही थी। उनकी प्रकृति निर्माणात्मक थी। वह नये समाज के निर्माण में लगी थी। आज की पत्रकारिता का कोई ऐसा रूप नहीं जिसका बीज भारतेन्दु में न हो। इस क्षेत्र में व्यंग्य विधा के वे प्रणेता थें। उनका व्यंग्य बहुआयामी था। 'अंधेर नगरी और चौपट राजा' से अच्छा और प्रभावशांली हिन्दी साहित्य में दूसरा नाटक या कार्य नहीं है। इसमें भी ग्रामीण परिवार की झांकी प्रस्तुत की गई है। भारतेन्दु युग की राजनीतिक व सामाजिक स्थिति पर चोट करते हुए इसने आज भी न तो अपनी प्रासंगिकता खोई है और न ही संदर्भ बासी पड़ा है। वह आज भी तरोताजा है।

भारतेन्दु के ग्रामीण परिवेश से संदर्भित लेखन के उदाहरण निम्नलिखित है :

वैशाख माहाव्यम

"जा तीरथ में न्हाइसे लीजै ताको नाम,
जहाँ न जानिए नाम नहँ विष्नु-तीर्थ-सुखधाम।
तुलसी श्यामा ऊपरी जो मधु-रिपु को देन।
सो नारायण होत है माध नै कटि हेत।
जो सींयत पीपर तसहि प्रात नहाइ हरि मानि।
करत प्रदर्शित भाँति बहुत सर्व देवयम जाति।
गाऊ पीठ सुहराइ कै न्हाह नजरि जल देइ।
कृष्ण प्रति तिपं दुर्ग दुर्गतिहिं देवम को गति लेह।"

प्रेमाश्रु-वर्णन

'जगाबन ही मनु पावस आयो।
भयो भोर पिय उठौ उठौ कहि मधुरे गर्राज सुनायो।

बोलो-बोलो और कोकिला कुहके दादुर शेर मचायो।
दामिनी दमकी मंगल बंदी जन मन नाच्यो गायो।
छोटी बूंद बरसी चौकाय आलस सबै मिटायो।
"हरी-हरी भूमि भरी सोभा जो देखत हीबनि आवै।
जहँ राधा अस माधव बिहरत कुंजन छिपि छिपि जावै।"

श्री चंद्रावती (नाटिका)
(सं. 1933 सन् 1876 मेधपा - मौलिक नाटक)

चंद्रिका : अरी सखियो , मोहि धमा करियो , अरौ देखे तो तुम मेरे पास आई और हमने तुमारो कछु सिष्टाचार न कियो। (नेत्रों में आँसू) भरकर हाथ जोड़कर) सखी मोहि छमा करियो और जानियो कि जहाँ मेरी बहुत सुखी से है , उन मैं एक कुलच्छिनी हूँ मैं।

भारत दुर्दशा
(सन् 1875 में छपा दुखान्त रूपक है , जिसे भारतेन्दु नाट्य राजन या लास्य रूपक कहते हैं)

गीत
कोऊ नहीं पकरन मेरो हाथ।
बीत कोटि सूत होन फिरन मैं हा हा होय अमाल।
जाकी सस गहन सोइ भारत सुनत न कोइ दुखगाथ।
दीन बन्यौ इस सौ उन डोलत टकरावत निज माथ।।
दिन दिन विपत्ति बढ़त सुख जीवन देत कोइ नहिं साथ।

भारत जननी
भारत दुर्दशा
भारत जननी जिस क्यों उदास।
बैठी इकली कोऊ नाहि पास।
किन देखहू यह रिनुमित प्रकास।
कुल सरसो वन करि उजास।।
खेतन में पकि रहे लखहू धान।
पियराने लगे व्यकित स्वास जान।
भयो सुखय सिसिर को माय अंत।
लखि सबहिन मिली गायो बसंत।।
तब क्यों न बांधि कंकन समन।
साजन केसरिया भूमि अंत।।

अंधेर नगरी चैपट्ट राजा
(सन् 1881 में लिखा गया और काशी के दशाश्वमेध घाट पर ही उसी दिन अभिनीत हुआ)
अंधेर नगरी अनबूझ राजा।
टका सेट भाजी टका सेर खाजा।।

निष्कर्ष

इस प्रकार भारतेन्दु हरि श्चंद्र की रचनाओं में ग्रामीण परिवे श का वर्णन मिलता है। ग्रामीण परिवेश की भाषा परम्परा व संस्कृति की उपस्थिति दिखती है। भारतेन्दु जी ने खड़ी हिन्दी को गद्य पद्य दोनों में इस्तेमाल किया। जहाँ उचित लगा ब्रज-अवधी में भी रचनाएँ की, जिनमें ठेठ गाँव की बोलियों उनके शब्द मुहावरे , लोकोकितयाँ मिलती हैं।

उनके काव्य में जैसे प्रेम सरोवर , होली, फूलों का गुच्छा, कृष्ण चरित्र आदि में ग्रामीण परिवे श की झलक दिखाई देती है। नाटकों में वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति , सत्यहरिश्चंद्र, भारत दुर्द शा, भारतजननी, अंधेर नगरी, पाखण्ड, विडम्बना, सबै जाति गोपाल की आदि में पात्रों में ग्रामीण परिवेश की झलक मिलती है। उनके गुरू में जैवे चरितावली, पुरावृत्त संग्रह , महाराष्ट्र दे श या इतिहास दिल्ली का दरबार दर्पण, बूंदी का राजवंश आदि में भी कहीं-कहीं पर ग्रामीण परिवे श का वर्णन है। उनकी धार्मिक रचनाओं में जैसे कार्तिक कर्म विधि , माघ स्नान विधि , पुरुषोत्तम दास विधान में ग्रामीण परम्पराओं और संस्कृति की उपस्थिति है। उनके यात्रा वर्णन , उनके पत्र

साहित्य आदि में ग्रामीण परिवेश का उल्लेख व झलक प्राप्त होती है।

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतेन्दु समग्र इसलिये चिन्हित किया गया क्योंकि भारतेन्दु वह समग्र साहित्य के रचनाकार थे जिन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा की रचना की और हिन्दी की ग्रामीण परिवेश की बोली और खड़ी हिन्दी को अपनी भाषा बनाया। भारतेन्दु हिन्दी को अपना स्थान दिलाने में महत्वपूर्ण योगदान रखते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1 भारतेन्दु समग्र: सम्पादन हेमेन्द्र शर्मा , प्रचारक, ग्रन्थावली परियोजना , हिन्दी प्रचारक संस्थान , वाराणसी।